
इकाई 18 व्यवहार पदों का सामान्य परिचय भाग – 1 धन संबंधी विवाद

इकाई की रूपरेखा

- 18.0 उद्देश्य
- 18.1 प्रस्तावना
- 18.2 ऋणादान
- 18.3 निक्षेप
 - 18.3.1 अस्वामिविक्रय
 - 18.3.2 संभूयसमुत्थान
 - 18.3.3 दत्तानपाकर्म
 - 18.3.4 श्रमिक संबंधी विवाद
 - 18.3.5 अभ्युपेत्याशुश्रूषा
 - 18.3.6 सामाजिक संगठनों का कानून
 - 18.3.7 क्रय विक्रय संबंधी कानून
- 18.4 सारांश
- 18.5 शब्दावली
- 18.6 बोध प्रश्न
- 18.7 बोध प्रश्नों के उत्तर
- 18.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

18.0 उद्देश्य

इस इकाई में हम भारतीय न्याय चिन्तन में व्यवहार पदों के विषय में पढ़ेंगे। इसे पढ़कर हमें ज्ञात होगा कि किस किस प्रकार के मुकदमे न्यायालयों में चला करते थे। इससे समाज में विवादों के कारणों का ज्ञान भी होगा।

18.1 प्रस्तावना

व्यवहार पद का अर्थ है न्यायालय में मुकदमेबाजी के मुद्दे अर्थात् वे विषय जो न्यायालयों में उठाये जा सकते हैं। इन्हें विवाद पद भी कहा जाता है। प्रजा के लोगों में कई मुद्दों को लेकर आपसी झगड़े हो सकते हैं। किन्तु हर विवाद को राजकीय न्यायालयों में न अब उठाया जा सकता और न ही धर्मशास्त्रीय तन्त्र में यह संभव था। भारतीय ज्ञान परंपरा में राज्य द्वारा स्थापित न्यायालयों की व्यवस्था बहुत सुघटित और सुयोजित व्यवस्था है। तब भी न्यायालयों को हल्के में नहीं लिया जा सकता था। न्याय तन्त्र की अपनी मर्यादा थी।

इसलिए धर्मशास्त्र के ग्रंथों में इस बात पर विचार किया गया है कि कौन-कौन से मुद्दे लेकर वादी और प्रतिवादी न्यायालय में अपना वाद प्रस्तुत कर सकते हैं। पारंपरिक रूप से अद्वारह प्रकार के मुकदमे राजा के आगे अर्थात् राजकीय न्यायालयों में समाधान के लिए प्रस्तुत किए जा सकते थे। इनमें अनेक का संबंध अर्थ से अर्थात् पैसे के लेनदेन से, जमीन जायदाद से है। ये मुकदमे अर्थ मूलक वाद-विवाद कहलाते हैं। दूसरी तरफ किसी के शरीर या सम्पत्ति को किसी भी प्रकार से नुकसान पहुंचाने

वाले कृत्य भी उन विवादों के वर्ग में आते हैं जो राजा के समक्ष न्याय सभा में प्रस्तुत किए जा सकते हैं। ये हिंसा मूलक विवाद कहलाते हैं।

आजकल दीवानी (सिविल) और फौजदारी के मुकदमों का भेद इसी आधार पर किया जाता है। परन्तु एक अन्तर है। आज दीवानी (सिविल) मामले दो पक्षों के बीच के विवाद माने जाते हैं जिनमें दोनों वादियों को अपना अपना साक्ष्य स्वयं प्रस्तुत करना होता है जबकि फौजदारी के मामलों में सरकार अभियोजन पक्ष बन जाती है तथा अपराधी के विरुद्ध साक्ष्य एकत्र करने का दायित्व भी सरकार पर होता है। दूसरे फौजदारी मुकदमों में अपराध का दण्ड मिलता है लेकिन दीवानी के मामलों में दण्ड नहीं मिलता। दोषी पक्ष से दूसरे पक्ष को उसका धन या विवादित संपत्ति दिलवा दी जाती है। दूसरी ओर धर्मशास्त्रीय न्याय व्यवस्था में सब मामले दो पक्षों के बीच के ही मामले माने जाते हैं, उनमें राज्य का हस्तक्षेप नहीं होता। हाँ, हत्या जैसे मामलों में और राजविरोधी गतिविधियों के लिये अवश्य राज्य को अन्वेषण करने का निर्देश दिया गया है। कौटिलीय अर्थशास्त्र में कण्टक शोधन नामक अध्याय में यह व्यवस्था है कि राजविरोधी मामलों में राजा स्वयं संज्ञान लेकर अपराधी को दण्ड दे।

मनु, याज्ञवल्क्य, नारद आदि स्मृतियों में विवाद पदों की लगभग समान सूचियाँ मिलती हैं। भिन्न भिन्न ग्रन्थों में अनेक ऐसे विवादों का उल्लेख है जो इन पारंपरिक अद्वारह विवाद पदों में नहीं आते। उन्हें प्रकीर्णक वर्ग में रखा जाता है। इससे पता चलता है कि इनके अतिरिक्त अन्य अनेक प्रकार के विवाद न्यायालयों में लाये जाते थे। इनमें से बहुत से विवादों का संबंध अलग अलग व्यवसाय के लोगों की लापरवाही या छल कपटपूर्ण आचरण से है।

18.2 ऋणादान

पैसा उधार लेने – देने के विवादों का उल्लेख ऋणादान के अन्तर्गत आता है। यद्यपि आर्थिक मामलों में धर्मशास्त्र दोनों पक्षों को अपना निर्णय करने का अधिकार देता है, फिर भी वह अलग अलग पक्षों के परस्पर विरोधों का समाधान करने का प्रयास करता है। अतः जहाँ एक ओर उधार लेने वालों को सूदखोरो से बचाने के नियम हैं वहीं दूसरी ओर उधार देने वालों की पूँजी की रक्षा करने के नियम भी धर्मशास्त्र में मिलते हैं।

ब्याज (लाभ या वृद्धि) की दर निर्धारण का मूल सिद्धान्त यह है कि उधार देने में पूँजी को खतरा कितना है। यदि उधार लेने वाले की पैसा चुकाने की क्षमता कम हो तो ब्याज दर अधिक है, समुद्री व्यापार के लिये उधार देने में पैसा डूबने का अधिक भय है इसलिये इस काम के लिये अधिक ब्याज दर लेने की अनुमति दी गई है। इसका कारण यह है कि उधार देने वाले निजी व्यक्ति ही होते थे न कि आजकल की तरह बड़ी बड़ी बैंकिंग कंपनियाँ या शासन समर्थित अन्य उपक्रम। इसलिये उधार लेने के लिये कुछ सम्पत्ति गिरवी रखने का प्रचलन दिखाई देता है। जो सम्पत्ति भी गिरवी नहीं रख सकता था और उधार नहीं चुका पाता था उसे ऋणादाता के घर या व्यवसाय में सेवा करनी होगी – यह नियम भी दिखाई देता है। पिता के बाद पुत्र को पिता का लिया उधार चुकाने का नियम भी है। ये व्यवस्थायें शोषण व अत्याचार को बढ़ावा देने वाली लगती हैं। पर उनके दुष्प्रभाव को कम करने का प्रयास धर्मशास्त्र करता है। निर्धनों व रोगियों को ब्याजमुक्त करने की बात करके कौटिल्य ने अपनी संवेदनशीलता प्रकट की है। वसिष्ठ स्मृति ने सूदखोरी को ब्रह्म हत्या से बड़ा पाप

कहा है। इस प्रकार अनेक विचार धर्मशास्त्र में मिलते हैं जिससे पता चलता है कि अलग अलग कालों में अलग अलग विचारकों ने अलग अलग नियम बनाये होंगे।

ऋणादान के अन्तर्गत कई प्रकार के ब्याजों का उल्लेख प्राप्त होता है जो भिन्न भिन्न प्रकार के और विभिन्न अवधियों के ऋणों पर लगते थे। कहीं दैनिक ब्याज कहीं मासिक ब्याज का उल्लेख है। ब्याज दर सवा प्रतिशत प्रति मास यानि पन्द्रह प्रतिशत प्रतिवर्ष से दो प्रतिशत प्रति मास यानि चौबीस प्रतिशत प्रतिवर्ष तक बताई गई है। लगभग सभी शास्त्रकारों का मत है कि ऋणदाता (मूल व ब्याज मिलाकर) मूल से दोगुनी राशि एक बार में नहीं ले सकता। वस्तुएँ उधार देने पर अधिक मात्रा में वस्तुएँ ब्याज रूप में ली जा सकती थीं। जैसे सोना चाँदी जैसे बहुमूल्य द्रव्यों का दोगुना, घी, नमक आदि का आठ गुना तक लेने की व्यवस्था है।

ऋण के बदले कुछ चल या अचल संपत्ति गिरवी रखने का प्रचलन भी प्राचीन ग्रन्थों में दिखाई देता है। ऋण के आंशिक या पूर्ण भुगतान के रूप में ऋणदाता आधि का भोग कर सकता था।

ऋण, ब्याज, आधि आदि के विषय में और भी बहुत से जटिल नियम धर्मशास्त्र में मिलते हैं। इससे पता चलता है कि ऋणादान एक बहुत ही व्यापक विवादपद रहा है।

18.3 निक्षेप

जो बहुमूल्य वस्तु सुरक्षित सम्हालने के लिये किसी के पास रखवाई जाये वह आधि या निक्षेप कहलाती है। यदि कोई घर से बाहर जा रहा हो या किसी और कारण से अपनी संपत्ति की रक्षा न कर पा रहा हो तो वह उसे किसी अन्य व्यक्ति के पास धरोहर के रूप में रखवा सकता है। किसी दूसरे पर विश्वास के आधार पर गिरवी रखी जाती है। विश्वास भंग करके धरोहर को हड़पना अपराध माना गया है। शास्त्र की मान्यता है कि जिस व्यक्ति ने किसी की संपत्ति धरोहर के रूप में रखी है उसे उसकी रक्षा अपनी संपत्ति के समान ही करनी चाहिए। यदि किसी दैवी या राजकृत कारण से या चोरी आदि के कारण यदि वह वस्तु नष्ट हो जाए तो धरोहर के रूप में रखने वाला देनदार नहीं होता। लेकिन यदि धरोहर रखने वाला उसका दुरुपयोग करे या असावधानी के कारण उसे खो दे या कोई नुकसान पहुँचाए तो पूरी भरपाई का दायित्व उसपर आ जाता है।

18.3.1 अस्वामिविक्रय

इसका अर्थ है किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा संपत्ति का विक्रय जो उसका स्वामी न हो। पहले भी लोग किसी की वस्तु या संपत्ति को दूसरों को धोखे से बेच देते थे। धर्मशास्त्र मूल स्वामी और खरीदार दोनों के हानि – लाभ पर विचार करता है। ऐसे में खरीदार का पैसा लुटता है और वास्तविक स्वामी को भी मानसिक और कानूनी परेशानी झेलनी पड़ती है। कई बार लोग जान – बूझकर भी चोरों या किसी के सेवक आदि से वस्तुएँ खरीदते हैं या किसी से बहुत कम दाम पर कोई वस्तु खरीदते हैं तो कानून मानता है कि उन्हें पता है कि इस दाल में कुछ काला है। ऐसे में खरीदार पर भी कार्रवाही होती है। पर यदि खरीदार धोखेबाज विक्रेता को राजा के सामने प्रस्तुत करदे तो वह स्वयं छूट सकता है। धर्मशास्त्रीय न्याय व्यवस्था में राजा को निर्देश दिया गया है कि ऐसी संपत्ति वास्तविक स्वामी को वापस करवा दे। दूसरों की संपत्ति बेईमानी से बेचने या देने वाले को दण्डित करने का विधान है।

18.3.2 संभूयसमुत्थान

संभूय समुत्थान का अर्थ है मिलकर कोई आर्थिक गतिविधि करना। इसे साझेदारी में काम करना कहा जा सकता है। कई बार व्यापारी या शिल्पी या अभिनेता या संगीतकार मिलकर कोई काम या व्यापार करते हैं। जैसे कुछ व्यापारी मिलकर पूंजी निवेश करके कोई व्यापार कर सकते हैं या कुछ शिल्पी अभिनेता संगीतज्ञ आदि अपना समूह बनाकर मिलकर काम कर सकते हैं। ऐसे में उनके परस्पर अधिकारों और कर्तव्यों का निर्धारण करने तथा अन्य व्यक्तियों और समूहों से उनके संबंधों और विवादों का समाधान करने के लिए नियम इस विवाद पद के अंतर्गत दिए गए हैं।

साझेदारी में लाभ और हानि या नुकसान का बंटवारा एक महत्वपूर्ण समस्या है। इसके विषय में धर्म शास्त्र का मूल सिद्धांत है कि या तो साझेदारों की अपनी सहमति से यह बंटवारा हो या फिर हर एक के पूंजी अथवा श्रम के योगदान के आधार पर अथवा जिसका काम अधिक महत्वपूर्ण हो उसे अधिक भाग दिया जा सकता है।

साझेदारी के कामों का नियमन करने के लिए और बहुत से नियम धर्मशास्त्रों में मिलते हैं जैसे सामूहिक दायित्व का नियम अर्थात् जो कार्य एक साझेदार सब की ओर से काम करता है वह सब सदस्यों पर उससे सब बंधे हुए होते हैं लेकिन यदि कोई एक साझेदार छल या कपट करता है या बिना सहमति के कुछ कर देता है जिसे सबका नुकसान हो जाता है तो उस व्यक्ति को अन्य साझेदारों के नुकसान की भरपाई करनी पड़ती है। किसी साझेदारी को साझेदारी से पृथक करने के नियम भी धर्म शास्त्र में दिए गए हैं। यदि कोई साझेदार धोखाधड़ी करे उसे बिना लाभांश दिये साझेदारी से अलग किया जा सकता है। किसी साझेदार की मृत्यु होने पर उसका भाग उसके उत्तराधिकारियों को मिल सकता है।

18.3.3 दत्तानपाकर्म

दान से स्वामित्व का अंतरण दूसरे व्यक्ति को हो जाता है, अतः दी हुई वस्तु को पुनः वापस नहीं लिया जा सकता। इस विवाद पद में यह बताया गया है कि किन परिस्थितियों में दी हुई वस्तु को वापस लिया जा सकता है और कब उसे वापस नहीं लिया जा सकता। कुछ वस्तुएं, जैसे धरोहर में रखी वस्तु, दूसरे की संपत्ति, पुत्र या पत्नी आदि अदेय हैं – यानी इन्हें कभी दिया ही नहीं जा सकता। इसलिए इनका दान मूलतः ही अवैध है। कुछ वस्तुओं में वस्तु तो देय होती है किंतु दाता उन्मत्तता, वृद्धावस्था या कम उम्र के कारण दान देने में अक्षम होता है। इसलिए दाता के निवेदन पर ऐसे दान निरस्त किए जा सकते हैं

18.3.4 श्रमिक संबंधी विवाद

श्रमिकों और कर्मचारियों के कानून धर्मशास्त्र में तीन विवाद पदों के अंतर्गत आते हैं – १. वेतनादान – वेतन का भुगतान न करना, २. अभ्युपेत्याशुश्रूषा – काम स्वीकार करके उसे पूरा न करना तथा ३. स्वामिदृपाल विवाद यानी खेतों खलिहानों के रखवालों और उनके स्वामियों के विवाद। इस विभाग में वेतन देकर काम करवाने वाले स्वामी तथा वेतन लेकर काम करने वाले श्रमिकों दोनों के हितों का संतुलन करने का प्रयास धर्मशास्त्र करता है। श्रमिक और सेवा ग्रहीता दोनों की स्थिति बहुत असमान है। धन देने वाले की स्थिति मजबूत है लेकिन श्रम करने वाला उससे प्राप्त धन पर पूरी तरह निर्भर है। इसलिए उसे न्याय व्यवस्था से अपेक्षा कुछ अधिक है। धर्मशास्त्र के कानून में श्रमिक और सेवा ग्रहीता के मध्य समझौते का महत्व है। किस कार्य के

लिए कितना वेतन दिया जाएगा, क्या काम किया जाएगा – यह पहले से निश्चित कर लेना चाहिए। यदि वेतन पहले से निश्चित न हो तो स्मृतियों में उत्पाद का दसवां भाग मजदूरी के रूप में देने की व्यवस्था है। किंतु वह नियम भी है यदि श्रमिक को भोजन वस्त्र आदि न दिए जाते हों तो दसवां हिस्सा दिया जाना चाहिए अन्यथा उत्पाद का एक तिहाई कम से कम दिया जाना चाहिए। काम स्वीकार कर के अकारण काम न करने वाले श्रमिक के लिए तय राशि का दुगना जुर्माना देने का विधान मिलता है। यदि वह बीमार हो तो काम पूरा करने के लिए अपने स्थान पर किसी और को भेज सकता है। इससे सेवा ग्रहीता का काम भी नहीं रुकता। यदि सेवा ग्रहीता मजदूरी न दे तो उस पर जुर्माना लगाने का नियम है। मजदूरों की असावधानी से स्वामी का सामान नष्ट हो तो उसे हर्जाना देने का भी विधान है।

18.3.5 अभ्युपेत्याशुश्रूषा

अभ्युपेत्याशुश्रूषा में दो प्रकार के श्रमिकों की चर्चा मिलती है – कर्मकर व दास। इनमें आपसी समझौते के अन्तर्गत तय वेतन लेकर तय काम करने वाले कर्मकर कहलाते हैं तथा केवल भरण पोषण खाना कपड़ा लेकर स्वामी की सेवा करने वाले दास कहे गए हैं। इस विषय का विस्तार करके बिना वेतन लिए सेवा करने वाले अन्य वर्ग भी सम्मिलित किये गए हैं – जैसे गुरुकुल में गुरु का काम करने वाले शिष्य या किसी कला शिल्प के विशेषज्ञ से वह कला सीखने वाले अंतेवासी। आज की भाषा में इंटरन कहा जा सकता है। इसी संदर्भ में शिष्यों और अंतेवासियों के अधिकारों और कर्तव्यों की व्याख्या की गई है।

वैतनिक कर्मकरों को दैनिक वेतन पर रखा जा सकता है या उससे अधिक अवधि के लिए भी नियुक्त किया जा सकता है। इन्हें तीन वर्गों में बाँटा गया है – उत्तम जैसे सैनिक, मध्यम जैसे खेती करने वाले तथा अधम उसे अन्य सब सेवक। संभवतः आज के संदर्भ में इन्हें कुशल, अर्धकुशल व अकुशल मजदूर कहा जा सकता है। दासों व कर्मकरों के दायित्व वेतन भिन्न-भिन्न हैं। दासों से अशुभ काम जैसे मल उठाना आदि अधिक करवाए जाते थे। कोई कर्मकर कोई काम करने से मना कर सकता था किंतु दासों के लिए नियम है कि उन्हें हर काम करने के लिए बाध्य किया जा सकता था। दासों को मात्र भोजन वस्त्र देकर पीढ़ी दर पीढ़ी काम करवाया जा सकता था। प्राचीन व्यवस्था ने दास प्रथा को स्वीकार किया है लेकिन समय-समय पर पहले के अधिक क्रूर और विषम नियमों को बदला है। जैसे स्वामी को पहले दासों को मारने पीटने का अधिकार था लेकिन बाद के ग्रंथों में यह नियम नहीं मिलता। पहले दासों को संपत्ति रखने का अधिकार नहीं था किन्तु मध्यकालीन निबंधों और टीकाकारों ने उन्हें अपनी संपत्ति रखने का अधिकार दिया है। पहले दास को दासता से मुक्ति नहीं मिल सकती थी किंतु बाद के ग्रंथों में दासों को मुक्त करने के कई उपाय बताए हैं। इससे ज्ञात होता है कि भारतीय न्याय व्यवस्था ने श्रमिकों और दासों की दुर्दशा के प्रति संवेदनशीलता दिखाई है तथा नियमों में सुधार की संभावना को स्वीकार किया है।

18.3.6 सामाजिक संगठनों का कानून

सामाजिक जीवन को सुचारू रूप से चलाने के लिए मनुष्य अनेक संस्थाएं और संगठन बनाते हैं तथा उनके संचालन के लिए उचित नियम भी बनाते हैं। इसके अतिरिक्त ऐसी अनेक संस्थाएं और संगठन समाज में हैं जिनकी सदस्यता हमें जन्मतः या किसी स्थान में निवास करने से प्राप्त होती है। जैसे जाति, गांव, श्रेणी या देश।

चाहे हमने स्वेच्छा से इनकी सदस्यता नहीं स्वीकार की है किंतु फिर भी जन्मतः इनकी सदस्यता होने के कारण हम इन के नियमों और अनुशासन से बंधे होते हैं। यह एक स्वतः सिद्ध समझौता है जिससे उस संगठन के सदस्य के रूप में हम बंधे हैं। दोनों प्रकार के समझौतों को संवित् अथवा समय कहते हैं। व्यतिक्रम का अर्थ है उल्लंघन। समयग का अर्थ हुआ समझौतों का उल्लंघन करना करना। कुल मिलाकर इन दोनों के अंतर्गत सामाजिक संगठनों के सदस्यों के परस्पर अधिकारों और कर्तव्यों और इन संगठनों के संचालन के नियमों का विधान किया गया है

भारतीय न्याय व्यवस्था में लोगों के इन संगठनों को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है यह संगठन बहुत सीमा तक स्वायत्त हैं किंतु धर्मशास्त्रों में इनके उचित संचालन के लिए नियम बनाए गए हैं। परवर्ती टीकाकारों और निबंधकारों ने इनकी स्वतंत्रता बनाए रखते हुए भी इन्हें सरकार द्वारा बनाई व्यवस्थाओं के अधीन कार्य करने का विधान किया है। इससे कुछ ऐसा संकेत मिलता है कि परवर्ती काल में अर्थात् मध्यकाल में सामाजिक संगठनों को राज्य के अधीन लाने का प्रयास किया गया था।

स्मृतियों के अवलोकन से कई सामाजिक संगठन की गतिविधियों का ज्ञान होता है। जैसे, ग्राम के लोग मिलकर यह निर्णय कर सकते हैं कि वे मिलकर पशुओं की चोरों से रक्षा करेंगे या पास के गाँव को नहर का पानी अपनी तरफ मोड़ने से रोकेंगे या गांव में कोई मंदिर, कुएँ आदि का निर्माण करेंगे। प्रत्येक ग्रामवासी के लिये ऐसे कार्य में धनदान या श्रमदान करना अनिवार्य होता है। व्यवसायियों के संगठन को श्रेणी कहा गया है। ये नियम बना सकते हैं कि कौन-कौन क्या-क्या वस्तुएं बेच सकता है या नहीं बेच सकता सैनिकों का समूह पूग कहलाता है। ग्रात हाथी सवार सैनिकों का समूह है। ये मिलकर युद्ध करने का निर्णय कर सकते हैं। राजाओं को निर्देश दिया गया है कि वे इन संगठनों के निर्णयों और नियमों को सदस्यों पर लागू करवाएँ। धर्मशास्त्र में इन संगठनों के संचालन के लिए एक समिति बनाने का विधान है। समिति के सदस्यों का कार्य चिंतक कहा गया है। संगठन के प्रबंधकों का विरोध करना एक दंडनीय अपराध माना जाता है। संगठन के सम्मेलनों में अनर्थक बोलने वालों पर जुर्माने की व्यवस्था है। संगठन की संपत्ति को हानि पहुंचाने वाले व्यक्ति को देश निकाला या संगठन से बाहर कर देने का दंड दिया जा सकता है। मध्यकालीन धर्म शास्त्रों ने व्यवस्था दी है कि स्थानीय संगठनों के नियमों को राजा के पास पंजीकृत करवाना आवश्यक है प्रबंधकों और संगठन के सदस्यों के मध्य विवाद का समाधान भी राजा के अधिकारियों को करना होता था इस प्रकार से सामाजिक संगठनों में प्रशासन का हस्तक्षेप मध्य काल के ग्रंथों में अधिक दिखाई देता है।

18.3.7 क्रय विक्रय संबंधी कानून

क्रय विक्रय या खरीद बेच विषयक नियम धर्मशास्त्रों में क्रीत्वा अनुशय या क्रयविक्रय अनुशय नामक विवादपद के अंतर्गत दिए गए हैं। इसका अर्थ है खरीद कर या बेच कर पश्चात्ताप करना। वस्तुओं का क्रय - विक्रय अर्थव्यवस्था को गति देने के लिए बहुत जरूरी होता है। बाजार में स्थिरता भी अर्थव्यवस्था को मजबूत करने के लिए आवश्यक है। इसलिए व्यापारिक सौदों को पक्का करने की आवश्यकता को भारतीय न्याय व्यवस्था ने स्वीकार किया है। सामान्यतः नियम है कि कोई वस्तु बेचकर विक्रेता को तय समय में उसे खरीदार को देना होता है और क्रेता को तय समय में पूरा भुगतान करना होता है। फिर भी भारतीय कानून व्यवस्था में इस सत्य को स्वीकार किया गया है कि यदि क्रेता या विक्रेता को लगे कि सौदा उसके हित में नहीं तो वह उस सौदे को निरस्त कर सकता है। इसके लिये बहुत सूक्ष्म ढंग से विचार किया गया

है। ऐसे में क्रेता वस्तु लौटा कर अपने पैसे ले सकता है। विक्रेता पूरे पैसे लौटाकर अपनी वस्तु ले सकता है। मनु ने सौदा निरस्त करने के लिये दस दिन की अवधि निश्चित की है। किंतु यदि सामान खराब होने वाला हो तो उसे उसी दिन वापस करना आवश्यक है। यदि क्रेता ने बहुत जांच परख के कोई वस्तु खरीदी हो तो वह उसे वापस नहीं कर सकता। बेचने या बेचने का वादा करने के बाद वस्तु के दाम अचानक बढ़ जायें तो विक्रेता अधिक लाभ के लिये सौदा निरस्त नहीं कर सकता। भूमि के विषय में कई विशेष नियम दिखाई देते हैं। उदाहरण के लिए यदि क्रेता निश्चित अवधि में पूरा मूल्य चुकाने का वचन दे तो वह कुछ अंश राशि देकर भी भूमि का स्वामित्व प्राप्त कर सकता है। सीमा विवाद के नाम से भूमि की सीमा के विषय में विवादों का उल्लेख मिलता है। भूमि के स्वामियों का दायित्व है कि वे अपनी भूमि की सीमा अच्छी तरह चिन्हित कर दें। उन्हें अपनी जमीन के सीमा पर घड़ों में पत्थर, हड्डियां या राख भरके सीमा को चिन्हित करना चाहिये। खेतों व अन्य भूखंडों की सीमा पेड़ों से भी चिन्हित की जा सकती है।

हिंसा मूलक विवाद

इनके पाँच वर्ग हैं – वाक् पारुष्य, दण्डपारुष्य, स्तेय, साहस और स्त्रीसंग्रहण।

1. वाक्पारुष्य व दण्डपारुष्य – वाक्पारुष्य का अर्थ है आघात पहुंचाने वाले शब्दों का प्रयोग करना जैसे गाली देना या दिव्यांगों को अंधा, लंगड़ा आदि कहना। इसके अतिरिक्त आज मानहानि के दावों को भी इसके अंतर्गत शामिल किया जा सकता है।

धर्म शास्त्रों की प्राचीन व्यवस्था के कुछ नियम आज मान्य नहीं हो सकते जैसे अपराधी की जाति के आधार पर दंड देना। वहां पर व्यवस्था थी कि यदि अवर जाति का व्यक्ति यदि उच्चतर जाति के व्यक्ति को अपशब्द कहे तो उसे कठोर दंड दिया जाए लेकिन यदि तथाकथित उच्च वर्ग का कोई व्यक्ति किसी तथाकथित निम्न जाति के व्यक्ति को अपशब्द कहे तो कम दंड मिले। जाति भेद के आधार पर बनी हुई यह दंड व्यवस्था आज की समानता व लोकतंत्र को प्रधानता देने वाली राजनीतिक व्यवस्था में स्वीकार्य नहीं हो सकती।

दंड पारुष्य में हल्की चोट पहुंचाने से लेकर हड्डी तोड़ने या हत्या करने तक के मामले आते हैं।

2. स्तेय, साहस एव स्त्रीसंग्रहण – स्तेय का अर्थ है चोरी। भारतीय कानून के ग्रंथों में दो प्रकार के चोर बताए गए हैं। एक प्रकाश तस्कर यानी खुलकर चोरी करने वाले जैसे जेबकतरे, सेंधमार या घरों में से सामान चुराने वाले। दूसरे हैं अप्रकाश तस्कर यानी छिपे हुए चोर जैसे मिलावट करने वाले या नकली माल बेचने वाले या घटिया वस्तुओं को बढ़िया बताकर ठगने वाले। नकली वैद्य, जादू टोना करने वाले और भविष्यवाणी करने वाले को भी अप्रकाश तस्करों की श्रेणी में शामिल किया गया है।

बहुमूल्य धातुओं व स्त्रियों को चुराने पर मृत्युदंड तक का विधान दिखाई देता है। अपराध की गंभीरता को देखते हुए हाथ पैर काटने जैसे कठोर और क्रूर दंड भी इस प्रसंग में सुझाए गए हैं। लेकिन दूसरी ओर कानून व्यक्ति के अपराध की गंभीरता और परिस्थितियों के अनुसार ही उसे दंड देने की बात करता है। जैसे

राह चलते यात्री यदि किसी के उद्यान से 1 या 2 फल बिना पूछे ले लें तो वे अपराधी नहीं माने जाते।

साहस के अंतर्गत बल का प्रयोग किए जाने वाले अपराध आते हैं – जैसे डकैती, अपहरण या हत्या। गाड़ी चालक की असावधानी से या तेजी से गाड़ी चलाने से किसी की मृत्यु हो जाए तो वह दंड का भागी माना जाता है। किंतु यदि गाड़ी का रास या पहिया टूट जाए और गाड़ी पलट जाए और उससे किसी को चोट आए या मृत्यु भी हो जाए तो भी चालक का अपराध नहीं माना जाता। इस प्रकार जानबूझकर या असावधानी से कोई अपराध करने और अनजाने में दुर्घटना होने में स्पष्ट भेद किया गया है।

3. स्त्री संग्रहण में स्त्रियों के प्रति अपराधों को रखा जाता है। इसमें किसी स्त्री के साथ छेड़छाड़ करना, पीछा करना, अभद्र स्पर्श करना आदि अपराध आते हैं। स्त्रियों के साथ किसी भी प्रकार के यौनाचार की संभावना के लिए कठोर दंड की व्यवस्था की गई है। इस विवाद पद में स्त्रियों को भी जटिल सामाजिक बंधनों में बांधा गया है और उनके घूमने फिरने किसी अन्य से बात करने की स्वतंत्रता पर नियंत्रण लगाए गए हैं। विशेषता विवाहिता के पति को निर्देश दिया गया है कि वह अपनी पत्नी को नियंत्रण में रखे। बलात्कार को बहुत गंभीर अपराध मान कर उसके लिए शिश्न कर्तन जैसे कठोर दंड का विधान किया गया है। अपनी किसी निकट संबंधी या अपने संरक्षण में रहने वाली (गुप्ता अर्थात् संरक्षित) के साथ यौनाचार के लिए प्राण दंड का प्रावधान किया गया है। इसके लिए स्वयं को आग में जलाकर मार देने का प्रायश्चित्त भी बताया गया है।
4. दाय विभाग भारत में वैदिक काल से ही संयुक्त परिवार को आदर्श माना गया है। उसमें सभी सदस्य मिलजुल कर रहते हैं और संपत्ति का मिलकर भोग करते हैं किंतु वहीं परिवारों में संपत्ति का बंटवारा झगड़े की जड़ रहा है। अतः धर्मशास्त्र में संपत्ति के विभाजन के व्यापक नियम मिलते हैं। इनकी चर्चा दाय विभाग प्रकरण की जाती है। दाय का अर्थ है देने योग्य या विभाजन योग्य संपत्ति। कोई व्यक्ति अपने जीवन काल में भी अपनी संपत्ति किसी को दे सकता है। पर मुख्यतः, उसकी मृत्यु होने के पश्चात उसकी संपत्ति किसे मिलेगी यह निर्णय दाय विभाग के अंतर्गत किया जाता है। इस विषय में बहुत से नियम मिलते हैं। तथा भारत के विभिन्न भागों में विभिन्न परंपराएं रही हैं। उदाहरण के लिए मनु में एक व्यवस्था है कि किसी व्यक्ति की मृत्यु के पश्चात उसकी सारी संपत्ति उसके ज्येष्ठ पुत्र को मिले किंतु स्वयं मनुस्मृति में अन्य व्यवस्थाओं के भी उल्लेख मिलते हैं। जैसे संपत्ति सब भाइयों में बराबर बाँटी जाए। याज्ञवल्क्य स्मृति में पिता की संपत्ति में सब पुत्रों को और मृतक की विधवा को भी बराबर का हिस्सा दे दिया गया है।

अंग्रेजी शासनकाल में शास्त्र ग्रंथों और उनकी विविध व्याख्याओं के आधार पर दाय विभाग के अनेक संप्रदाय बन गये जैसे जैसे जीमूतवाहन के ग्रंथ पर आधारित बना दायविभाग संप्रदाय बंगाल में प्रचलित था। याज्ञवल्क्य स्मृति पर विज्ञानेश्वर की टीका के आधार पर विकसित मिताक्षरा संप्रदाय भारत के अन्य अधिकांश भागों में प्रचलित था। महाराष्ट्र, कोंकण व दक्षिण के अन्य भागों में अन्य संप्रदाय प्रचलित थे।

दाय विभाग संबंधी कानून के विषय में एक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि इसमें शनैः शनैः लचीलापन आया। पहले के कुछ सामाजिक दुराग्रहों के कारण जिन वर्गों को

संपत्ति के अधिकार से वंचित रखा गया था उनका अधिकार भी कालांतर में स्वीकार कर लिया गया। जैसे कुछ स्मृतियों ने पुत्रहीन विधवा को पति की संपत्ति लेने का अधिकार नहीं दिया था। किन्तु याज्ञवल्क्य स्मृति के टीकाकार विज्ञानेश्वर ने अनेक तर्कों से उसके अधिकार की स्थापना की है। इससे ज्ञात होता है कि प्राचीन न्याय व्यवस्था में समाज की बदलती हुई अपेक्षाओं के अनुरूप बदलाव लाने की संभावना रही है। यह कट्टरपंथी व्यवस्था नहीं है।

माता की संपत्ति पर बेटियों का विशेष अधिकार माना गया है। उसकी मृत्यु के पश्चात उसकी संपत्ति उसकी बेटियों को मिलती है। यदि मृतक स्त्री के बेटे न हो तो उसके बेटों को मिल सकती है।

भारतीय न्याय व्यवस्था में स्त्रीधन का बहुत महत्व है। स्त्रीधन वह धन है जो स्त्री को अपने विवाह के समय या विवाह के उपरांत अपने माता-पिता के कुल से या पति के कुल से उपहार के रूप में मिलता है या वह उसे दाय के रूप में प्राप्त करती है। स्त्री धन पर महिला का विशेष अधिकार रहा है। उसका पति भी उसकी इच्छा के विरुद्ध उस धन को व्यय नहीं कर सकता और न ले सकता है।

18.4 सारांश

भारतीय न्याय चिन्तन में न्यायालयों में दो प्रकार के विवाद उठाने की व्यवस्था है — अर्थमूलक और हिंसामूलक। अर्थमूलक विवादों का संबंध पैसे के लेन देन से है और संपत्ति या शरीर को हानि पहुँचाने से संबंधित विवाद हिंसा मूलक कहे जाते हैं। न्याय व्यवस्था विषयक ग्रन्थों में इन विवादों के अनेक पक्षों पर बहुत सूक्ष्मता से विचार किया गया है। इससे पता चलता है कि भारतीय न्याय व्यवस्था बहुत परिपक्व थी।

18.5 शब्दावली

| | |
|---------------------|--|
| विवाद पद | — न्यायालयों में उठाये जाने योग्य विवादों के विषय |
| कण्टक शोधन | — कौटिलीय अर्थशास्त्र का चौथा अधिकरण |
| प्रकीर्णक | — वे फुटकर विवाद पद जो पारंपरिक 9८ पदों में नहीं आते |
| ऋणादान | — पैसा उधार लेने — देने संबंधी विवाद |
| निक्षेप | — किसी के पास अपनी बहुमूल्य वस्तु सुरक्षित रखने संबंधी विवाद |
| आधि | — गिरवी रखवाई वस्तु |
| अस्वामिविक्रय | — अनधिकृत विक्रय या दान विषयक विवाद |
| संभूय समुत्थान | — मिलकर काम करने संबंधी विवाद |
| दत्ताप्रदानिक | — दान देकर वस्तु न देने संबंधी विवाद |
| अभ्युपेत्याशुश्रूषा | — काम करने का वादा करके पूरा न करने संबंधी विवाद |
| समयानपाकर्म | — सामाजिक संगठनों के कार्य संबंधी विवाद |
| वाक्पारुष्य | — आघात पहुँचाने वाले शब्दों के प्रयोग संबंधी विवाद |
| दण्ड पारुष्य | — मार पीट संबंधी विवाद |
| स्तेय | — चोरी |
| साहस | — डकैती, हत्या जैसे आपराधिक मामले |

18.6 बोध प्रश्न

1. न्यायालय में उठाये जाने योग्य विषयों को क्या कहा जाता ?
2. विवाद पदों के दो मुख्य प्रकार कौन से हैं ?
3. स्मृतियों में विवाद पदों की सामान्यतः कितनी संख्या है ?
4. सूदखोरी को ब्रह्म हत्या से बड़ा पाप किसने कहा है ?
5. आधि किसे कहते हैं ?
6. निक्षेप किसे कहते हैं ?
7. साझेदारी में हानि – लाभ के विभाजन का मुख्य आधार क्या है ?
8. कर्मकर व दास में मुख्य भेद क्या है?
9. मनु के अनुसार क्रयदृविक्रय का सौदा कितने दिन में निरस्त किया जा सकता है?
10. दायभाग संबंधी दो मुख्य संप्रदाय कौन से हैं?

18.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. विवाद पद या व्यवहार पद
2. अर्थमूलक व हिंसा मूलक
2. १८
4. वसिष्ठ
5. गिरवी रखी वस्तु
6. सुरक्षित रखने के लिये दी गई वस्तु
7. पूँजी या श्रम का निवेश
8. कर्मकर का काम व कार्य अवधि निश्चित होती है, दास की नहीं
9. दस
10. दायभाग व मिताक्षरा

18.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. पी० वी० काणे – धर्मशास्त्र का इतिहास, खण्ड दो, अनुवादक अर्जुन चौबे काश्यप, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ।